Chapter-6

अध्याय : 6

राजनीतिक, साहित्यिक एवं शैक्षणिक समस्याएँ

अध्याय : 6

राजनीतिक, साहित्यिक एवं शैक्षणिक समस्याएँ

जिस प्रकार वैयक्तिक एवं सामाजिक धरातल पर कुछ निश्चित नैतिक प्रतिमानों की आवश्यकता है, उसी प्रकार राजनीतिमें भी कुछ निश्चित प्रतिमानों का आग्रह प्रारंभ से रखा जा रहा हैं । वैसे और क्षेत्रोंकी भाँति यहाँ भी उन प्रतिमानों की कभी उपेक्षा हुई हो, यह हो सकता है, किन्तु उससे यह प्रतिपादित नहीं हो सकता कि राजनीतिको नीतिरहित होना चाहिए । नीति रहित राजनीति आत्म-प्रवंचना है और वह किसी भी देश व समाज के पतन का मुख्य कारण हो सकती है । राजनीति एवं नैतिकता का अटूट सम्बन्ध बताते हुए श्री हेनरी सिजविक महोदय कहते हैं कि -- "अभी भी नीतिशास्त्र और राजनीति का कोई स्पष्ट भेद नहीं हो पाया है, क्योंकि राजनीति राज्य का सदस्य होने के नाते व्यक्ति की भलाई या कल्याण से ही सम्बन्धित है । वस्तुत: कुछ आधुनिक लेखक नीति शब्द का प्रयोग ही इतनी अधिक उदारता से करते हैं कि उसमें कम से कम राजनीतिका एक हिस्सा समाविष्ट रहता है ।"[1]

क्षात्रधर्म का लोप एवं नीति भ्रष्ट व्यावसायिक मूल्यों के उभरने के कारण हमारा साम्प्रतिक जीवन नैतिकता की दृष्टिसे निम्न-कक्षा तक पहुँच चुका है । इस सम्बन्ध में वह प्राचीन सूत्र आज भी तर्क-संगत लग रहा है कि "यथा राजा तथा प्रजा" । प्रजातांत्रिक शासन - प्रणाली में राजा का अर्थ शासक पक्ष या शासन - प्रक्रिया में संलग्नित लोग लिया जा सकता है । देश व समाज के नैतिक स्वास्थ्य के लिए इनमें नैतिकता व सिद्धान्त-निष्ठा का होना नितान्त आवश्यक है, अन्यथा इसका प्रभाव सामान्य लोगों को नीतिभ्रष्ट एवं दिशाभ्रष्ट कर सकता है । सम्प्रति हमारे देशमें व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार एवं नीतिहीनता का उत्स नीतिभ्रष्ट राजनीति है । पश्चिमी विद्वान कांतने भी इस बात पर जोर दिया है कि शासकीय सत्ता एवं राजनीति को सत्य व सिद्धान्तों का शिस्तबद्ध पालन करना चाहिए ।[2] मनुष्य को राजनीति से प्रेरित एवं राजनीतिक प्राणी मानते हुए महान ग्रीक दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ अरस्तूने उसे स्वभावत: सामान्य जीवन-व्यापारों को सुचारु रूप से चालू रखने के लिए राज्य सत्ताका संरक्षक माना हैं ।[3] अत: हम कह सकते हैं कि राजनीतिमें सफलता सराहनीय अवश्य है किन्तु स्वार्थान्ध भ्रष्ट एवं एकांगी दष्टिकोण से ग्रस्त राजनीति की आलोचना होनी ही चाहिए, क्योंकि ऐसी राजनीति अन्तत: देश व प्रजा को गलत दिशामें ले जाने के कारण असफल ही रहती है । इतिहास इस बातका साक्षी है कि राजनीति की बागडोर जब-जब किसी नीतिमान, उदार एवं विशाल-चेता सम्राट या राजाने सँभाली हैं तब-तब देश व प्रजा का कल्याण हुआ है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आज हमारे देश में जो व्यापक भ्रष्टाचार फैला हुआ है और नैतिक प्रतिमानों की छिन्न-भिन्नता दृष्टिगत हो रही है उसके लिए नीतिरहित - दृष्टिरहित राजनीति ही कारणभूत है ।

नगरीय परिवेश के उपन्यासों मे निरूपित राजनीतिक समस्याएँ :

:1: अयोग्य एवं भ्रष्ट लोगों का राजनीति में प्रवेश :

स्वाधीनता के उपरांत कैसे - कैसे लोगों का राजनीतिमें प्रवेश हो गया, उसका संकेत तो रेणु के "मैला आँचल" से ही प्राप्त हो चुका था । इधर "प्रश्न और मरीचिका", "सबहिं नचावत राम गोसाई", "प्रेम अपवित्र नदी", "दिल एक सादा कागज", "राग दरबारी" प्रभृति उपन्यासों में इसका बख़ूबी एवं व्यंग्यात्मक चित्रण उपलब्ध होता है ।

डो॰ राही मासूम रज़ा के उपन्यास "दिल एक सादा कागज़" के ठाकुर साहब बड़े रोब-दाब के आदमी थे । लेखक के ही शब्दों में -- "लड़ाई के दिनों में न जाने कितना चन्दा देकर राय साहब बने थे, पर जब उन्हों ने यह देखा कि हिन्दुस्तान अब आज़ाद हुए बिना नहीं मानेगा तो ठाकुर साहब ने सन् 1946 में राय साहब की पदवी लौटा दी । उनके पदवी लौटाते ही लोग यह भूले गये कि सन् 1942 में किस तरह उन्हों ने सरकार का साथ दिया था । उनके सिर पर गांधी टोपी थी । तो भला सन् 1946 या 1950 में गांधी टोपी पर कौन शक कर सकता था । किसी के पास इस बात पर सोचने के लिए तो समय था ही नहीं कि गांधी टोपी अब बाज़ार में मिलने लगी है । गांधी आश्रम की दुकानों पर खुले आम

बिकती है । जो चाहे खरीद ले । जो चाहे पहन ले । जो चाहे देशभक्त दिखायी देने लगे ।......ठाकुर साहब सन् 1948 आते-आते उस क्षेत्र के सबसे बड़े सोशल नेता बन गये ।"[4]

रज़ा के ही एक अन्य उपन्यास "टोपी शुक्ला में आज़ाद हिन्दुस्तान में मुसलमानों के बड़े लीडर होने का ख्वाब देखनेवाले एक सज्जन का उल्लेख मिलता है -- "वह नमाज़ नहीं पढ़ता था । रोज़ा नहीं रखता था । शराब पीता था ..... परन्तु दीने - मोहम्मदी के बचाव के लिए वह भी खड़ा हो गया था । फिर पाकिस्तान बन गया । वह कॉंग्रेसी हो गया । ज़िला कमेटी का मेम्बर हो गया । परन्तु खद्दर के नीचे वह अब भी मुसलिम लीगी था । वह मौक़े की तलाश में था । पहले तो उसने पाकिस्तान जाने के बारे में सोचा । परन्तु जब उसने यह देखा कि छोटे-बड़े तमाम लीडर पाकिस्तान जा रहे हैं तो उसने अपना इरादा बदल दिया । उसने कहा तो यही कि वह मौक़ा - परस्त लीडरों की तरह मुसलमानों को हिन्दुओं के रहमों-करम पर नहीं छोड़ सकता । परन्तु दिल में वह मुसलमानों का बड़ा लीडर बनने का प्रोग्राम बना रहा था । दो बेटियों की शादी कर चुका था । वे पाकिस्तान में खुश थीं ।"[5]

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास "प्रेम अपवित्र नदी" में लिलियन के यह पूछने पर कि आज़ादी की लड़ाई किस तरह के लोगोंने लड़ी ? विष्णुपद बहुत ही मर्मान्तिक शब्दों में इसका उत्तर देता है -- "वे लोग थे -- जमींदारों के लड़के, अंग्रेजी व्यवस्था और दुकानदारों के युवक - जिनके बाप कहीं अंग्रेजी शराब के व्यापारी थे, कहीं अंग्रेजी वस्त्रों के थोक-विक्रेता थे, कहीं वे अंग्रेजी चाय - बागान के मैनेजर थे, कहीं वे अंग्रेजी दफ़्तरों

न्यायालयों के अफसर और वकील थे, कहीं अंग्रेजी कॉलेजों के प्रोफेसर अध्यापक थे। इन्हीं पिताओं, बापों से विद्रोह करके उन युवकों ने आज़ादी की लड़ाई शुरू की। तभी वह दूसरा महायुद्ध आया। उसका काला बाज़ार खुला -- इसी बाज़ारमें आज़ादी की लड़त लड़नेवालों के पुत्रों ने धन कमाना शुरू किया। और जैसे ही हमें स्वतंत्रता मिली - उन पुरुषों ने जेलों से लौटे हुए अपने पिताओं से कहना शुरू किया -- पिताजी, बाबूजी, इलेक्शन लड़िए -- मंत्री बनिए ... इलेक्शन लड़ने के लिए धन हमारे पास है।"[6]

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "प्रश्न और मरीचिका" में यह बताया गया है कि देश के स्वाधीनता संग्राम में काम आनेवाले शिवलोचन शर्मा, मुहम्मद शफी जैसे लोग पीछे छूटते जा रहे हैं और उनके स्थान पर रूपा आण्टी, मुस्तफ़ा कामिल और विद्यानाथ जैसे लोग आगे आ रहे हैं, क्योंकि राजनीति सिद्धान्तवादियों का क्षेत्र नहीं, समझौतावादियों का क्षेत्र बनती जा रही है। जो रूपा आण्टी पैसों के लिए रामकुमार गाबड़िया नामक एक व्यापारी के साथ होटल में सोती है। वह अन्तत: संसद के चुनाव में जीत जाती है और शिवलोचन शर्मा पराजित होकर पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं। एक समयका मुसलिम लीगी लीडर मुस्तफ़ा कामिलको कॉंग्रेस मुहम्मद राफी जैसे राष्ट्रीय मुसलमान की तुलना में अधिक महत्त्व देती है क्योंकि मुसलमान वोट कामिल जैसे लोगों के पास है। सोशलिस्ट पार्टीका कर्मठ सिपाही विद्यानाथ बिक जाता है। इन सब उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि राजनीति अब तमाम भ्रष्ट लोगों का अड्डा होती जा रही है।

राजनीति - एक व्यवसाय :

आचार्य रामचन्द्र शुक्लने चिंतामणि के अपने निबन्धों में क्षात्र-धर्म के लोप और जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यावसायिकता के पनपने का उहापोह बहुत पहले किया था। राजनीति के नैतिक प्रतिमानों का स्थान व्यावसायिकता ग्रहण कर रही है। राजनीति एक "फुल टाईम जॉब" होती जा रही है। "प्रश्न और मरीचिका" का एक पात्र रामराज कहता है -- "भारत वर्ष स्वतंत्र क्या हुआ वकालत का पेशा ही ठप्प हो गया है। जमींदारी वो जमींदारी ...... उन्मूलन में निकल गई, सत्तर बीघे खेती बची है ..... लेकिन खेती में आजकल कुछ रक्खा नहीं है। उल्टे घरसे देना पड़ता है। तो सिवा नेतागिरी के और किसी दूसरे पेशे में फायदा नहीं है।"[7] अब इलेक्शन लड़ना कोई सामान्य बात नहीं है। बिना पैसों के इलेक्शन नहीं लड़ा जा सकता। उसमें काले-धन का प्रयोग होता है, अत: बादमें उससे काला-धन अर्जित होता है। यह लाखों को करोडों में बदलने की व्यवस्थित योजना है। स्व॰ माखनलाल चतुर्वेदी जीने इसीलिए गाया था -- "घर हो गये महल, पगदंडी राजमार्ग।"[8] राजकमल चौधरी के उपन्यास "मछली मरी हुई" में कहा गया है -- " जनता के वोट खरीदे जाते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ खरीदी जा सकती हैं। एम॰एल॰ए॰ और एम॰पी॰ बिकते हैं। मिनिस्ट्री बिकती है।"[9] यहाँ पूंजीवादी मनोवृत्ति लोकतांत्रिक मूल्योंकी प्रतिष्ठा का मानो मखौल उड़ा रही है। देश, तंत्र, समाज, लोकतंत्र तथा उसके समूचे मूल्यमानों टकाधर्मी हो गये हैं। "सबकी टकटकी टके की ओर लग गयी है।

सत्ताका हस्तान्तरण :

भगवतीचरण वर्मा कृत "प्रश्न और मरीचिका" में बताया गया है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजनीति में जो आमूल परिवर्तन आना चाहिए वह नहीं आया । आज़ादी महज सत्ताका हस्तान्तरण (Transfer of Power) मात्र बनकर रह गई । शासकीय मशीनरी में कोई खास परिवर्तन नहीं आया । जिन आई•सी•एस• अफ़सरों ने राष्ट्रवादियों को चनों की तरह भूंजा था और स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू जिनकी भर्त्सना कर चुके थे उनसे अब कहा जा रहा था -- "मिस्टर उपाध्याय । हमें देशका निर्माण करना है । यह हमारा सौभाग्य है कि हमें देवता स्वरूप पण्डित जवाहरलाल नेहरूका शासन मिला है -- पण्डित जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के मानस-पुत्र हैं । महात्मा गांधी ने जिस साधना और तपस्या का मार्ग दिखलाया है उस पर चलकर हम विश्व के अन्य राष्ट्रों का नेतृत्व प्राप्त कर सकते हैं । इस ओर मैं आप अधिकारियों के सक्रिय सहयोग की अपेक्षा करता हूँ ।"[10] देशको संगठित करके जहाँ सर्वहारा वर्ग के उत्कर्ष के लिए नयेढंग से कार्य होना चाहिये था, वहाँ उसके स्थान पर जवाहर भक्ति और विश्व - नेतृत्व की बातें चल रही थीं ।

चुनाव - हथकण्डे :

लोकतांत्रिक शासन - प्रणाली की आत्मा का आधार चुनाव पद्धति की पवित्रता एवं प्रामाणिकता पर निर्भर है जिसका हमारे यहाँ सर्वथा अभाव देखने में आता है । चुनाव जातिवाद, गुण्डावाद, पूंजीवाद, प्रचार के निम्न तरीके, चरित्र-हनन, प्रभृति आधारों को लेकर लड़ा जाता है ।

"आदर्शवाद का युग देशके स्वतंत्र होते ही समाप्त हो गया है । अब आदर्शवाद एक नारा भर रह गया है । असली चीज़ है अपनी सत्ता की रक्षा और सत्ता की रक्षा केवल पैसे के बल पर हो सकती है ।"[11] राजनीति और पूँजीवाद तथा राजनीति और जातिवाद का गठबन्धन हमें "प्रश्न और मरीचिका" तथा "सबहिं नचावत राम गोसाई" में उपलब्ध होता है । श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "राग दरबारी" में चुनाव के विविध हथकण्डों का व्यंग्यात्मक चित्रण मिलता है । इसमें चुनाव-संहिता की तीन प्रयुक्तियाँ बतायी हैं -- एक रामनगरवाली, दूसरी नेवादावाली और तीसरी महिपालपुरवाली जिनमें क्रमश: फौजदारी द्वारा प्रतिपक्ष के प्रभावशाली तत्वोंको जेलमे भिजवाकर एक-पक्षीय प्रचार-कार्य; किसी महात्मा को निमंत्रित कर उनके द्वारा भविष्य-कथन, चुनाव के अधिकारियों को अपने पक्षमें मिलाकर सीमित समयमें मतदान संपन्न करवाना जैसा प्रयुक्तियों को प्रयोग मे लाया गया है । सनीचर महिपालपुरवाली प्रयुक्ति से विजयी हुए थे ।[12] इस सम्बन्ध में वैद्यजी के सुपुत्र रुप्पन बाबू रंगनाथ से कहते हैं : "देखो दादा, यह तो पोलिटिक्स है । इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है । यह तो कुछ भी नहीं हुआ । पिताजी जिस रास्ते में हैं उसमें इससे भी आगे कुछ करना पड़ता है । दुश्मन को जैसे भी हो, चित्त करना चाहिये । यह चित्त न कर पायेंगे तो ख़ुद चित्त हो जायेंगे और फिर बैठे चूरन की पुड़ियाँ बांधा करेंगे और कोई टका को भी न पूछेगा ।"[13] इसी उपन्यास में कॉलिज के मैनेजर का चुनाव गुण्डागर्दी और तमंचे के बल पर होता है ।

प्रजातंत्र के सम्बन्ध में एक बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र लेखक ने वैद्यजी के स्वप्न के माध्यम से प्रस्तुत किया है । प्रजातंत्र वैद्यजी को स्वप्न में कहता

है : " ﴾हुजूर﴿ मैं आपके कॉलेज का प्रजातंत्र हूँ और आपने यहाँ की सालाना बैठक बरसों से नहीं बुलाई है । मैनेजर का चुनाव कॉलिज खुलने के दिन से आज तक नहीं हुआ है । ...... एक बार कायदे से चुनाव करादें उससे मेरे जिस्म पर एक कपड़ा आ जायगा । मेरी शर्म ढँक जायेगी ।"[14] इस पर वैद्यजी ने "एकदम तय किया कि देखने में चाहे कितना बौंगड़ू लगे, पर प्रजातंत्र भला आदमी है और अपना आदमी है, और उसकी मदद करनी ही चाहिए । उसे कम-से-कम एक नया कपड़ा दे दिया जाय ताकि पाँच भले आदमियों में वह बैठने लायक हो जाय ।"[15]

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास "प्रेम अपवित्र नदी" में विष्णुपद को हराने के लिए पँचानन नामक चोर को देश-विदेश घुमाकर स्वामी मस्तानंद के रूपमें स्थापित किया जाता है । स्वामी मस्तानंद का प्रभाव धर्मप्राण ﴾१﴿ जनता पर इतना बढ़ जाता है कि बेचारे विष्णुपद को अनेक शहरों की अदालतों में खाक छाननी पड़ती है ।

"प्रश्न और मरीचिका" का विद्यानाथ चुनाव के हथकण्डों की चर्चा करते हुए उदय से कहता है कि यह मतदान करनेवाली जनता बे-दिमाग, अपढ़ और भुलावों में भटकनेवाले लोगों का समूह भर है । चुनाव सिद्धान्तों पर न लड़े जाकर रूपया ﴾चाँदी का जूता﴿ , शक्ति ﴾असली जूता﴿, शराब झूठे वादे और झूठे नारों पर लड़े जाते हैं ।[16] यहाँ चुनाव शुद्ध लोकतांत्रिक तरीकों से नहीं लड़े जाते किन्तु उसमें सगावाद, धर्म, सम्प्रदाय, जातिवाद, रूपये-पैसे, गुण्डे आदि सभी तत्वोंका यथावश्यक उपयोग किया जाता है । पंडित शिवलोचन शर्मा एक स्थान पर लल्लूसिंहजी के स्थान पर जसराज यादव को टिकट देने का समर्थन करते हैं क्योंकि उस चुनाव - क्षेत्रमें अधिकांश वोटर अहिर थे ।[17]

स्वाधीनता-संग्राम में जिन मुस्लिमलीगियोंने अनेक अन्तराय उपस्थित किये थे तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काया था, उन्हीं लीगियों के साथ बादमें कांग्रेस वालोंने अपने संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए गठबन्धन किया । कुछ तो लीगी से कांग्रेसी बन गये । ऐसे कांग्रेसियों को उन राष्ट्रीय मुसलमान कांग्रेसियों से भी अधिक महत्व दिया जाने लगा क्योंकि उनके लीगी होने के कारण "मुसलमान-वोट-बेन्क" उनके साथ रहती है । शेख मुस्तफ़ा कामिल ऐसे ही कांग्रेसी हैं । उस स्थान पर राष्ट्रवादी, मुसलमान मुहम्मद शफी लीगियों को जिम्मेदारी के पदों को देने की नीति के विरुद्ध अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए स्वयं को उन लीगियों के मातहत में रखने की बात की कटु भर्त्सना करते हैं -- "जाती तौर से तो मैं उन्हें नहीं जानता क्योंकि मैं दिल्ली का बाशिन्दा नहीं हूँ, लेकिन मैं पूछता हूँ कि हम राष्ट्रीय मुसलमानों को, जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई में अपनी ज़िन्दगी तबाह कर दी । इन गद्दार मुस्लिम लीगियों की तहत में क्यों रखा जा रहा है ?"[18]

लगता है स्वाधीनता के उपरान्त मनुष्य नामक संज्ञा ही गायब हो गयी है । स्वतंत्र मनुष्य का तबसे जन्म ही मानो रूक गया है । अब मनुष्य जो पैदा होता है उसका नाम है मस्तानंद, गंजा चौधरी, हरिगोस्वामी (प्रेम अपवित्र नदी), विद्यानाथ, मुस्तफ़ा कामिल, रूपा आण्टी (प्रश्न और मरीचिका) , वैद्यजी, सनीचर, रामाधीन, भिखमखेडवी (राग दरबारी), परूसराम (आधा गाँव) । उन्हीं में से विकसित हुई राजनीतिक पार्टियाँ, हमारे नये नेता, पुलिस, व्यापारी, अधिकारी जिन्होंने चुनाव की पवित्रता

एवं प्रामाणिकता को नष्ट व दूषित ही नहीं किया प्रत्युत उसे एक गंदी गाली का रूप दे दिया ।

सत्ताकी राजनीति :

राजनीति सत्ता प्राप्त करने का एक-मात्र साधन हो गई है । फिर इसी सत्ता से धन प्राप्त किया जाता है, जो और बड़ी सत्ता प्राप्त करने में सहायक होता है । अत: हमारे यहाँ लोग येन केन प्रकारेण सत्ताकी ऊँची कुर्सी पर पहुँच जाना चाहते हैं और पहुँचे बाद किसी भी तरह उससे विलग नहीं होना चाहते ।

स्वाधीनता - संग्राममें "सबहिं नचरवत राम गोसाईं" के जबरसिंह "सुराजी" हो गए थे । आजादी के बाद मौका मिलते ही एम॰एल॰ए॰ हो जाते हैं । वे पडित सदाशिव गौतम के दाहिने हाथ थे । कुछ वरिष्ठ और तपे हुए कांग्रेस मैनों ने मुख्य मंत्री के प्रति पार्टी में अविश्वास का प्रस्ताव रख दिया था, और इन नेताओं के मुखिया थे सदाशिव गौतम । मुख्य मंत्रीजीने जबरसिंह को बुला कर गौतमजी के पास सन्देश भेजा कि वह गौतमजी को गृहमंत्री बना देंगे, अविश्वास का प्रस्ताव वापिस हो जाना चाहिए । सदाशिव गौतम तो यही चाहते थे, फलत: प्रस्ताव वापिस ले लिया गया और पण्डित सदाशिव गौतम गृहमंत्री बन गये -कमीशन में जबरसिंह को डिप्टी मिनिस्टरी मिली ।[19] यही जबरसिंह मौका पाते ही पण्डित सदाशिव गौतम को चुनाव में हरवाकर स्वयं गृहमंत्री हो जाता है । सेठ राधेश्याम जैसे देश के जाने-माने उद्योगपति से जबरसिंह की मित्रता है । सेठ ट्रेक्टरों का कारखाना डालना चाहते हैं । इस सम्बन्ध में यू॰पी॰ सरकार का सहयोग चाहिए । प्रदेश के मुख्यमंत्री हैं त्यागमूर्ति झम्मनलाल

सत्याग्रही । वे इसमें अडंगा लगाते हैं -- "इसी विज्ञान के कारण हमारे देशका ही नहीं, सारे संसार का विनाश होने वाला है । इसी विज्ञान के कारण समस्त विश्व में बेकारी बढ़ रही है । मैं गलत नहींकहता, अब तुम अपने इन ट्रेक्टरों को लो । एक ट्रैक्टर चार-पाँच सौ एकड़ जमीन जोत देगा, और ट्रक्टर को चलाने के लिए एक या अधिक-से अधिक दो आदमी चाहिए । ..... और एक हल से दस-बारह एकड़ जमीन से अधिक नही जोती जा सकती । तो चार सौ एकड़ जमीन जातने के लिए कम-से-कम तीस हल चाहिए, साठ बैल चाहिए । ..... तो फिर साठ बैलों की गोबरकी खाद, मर गये तो उनका चमडा ।"[20] इस पर जबरसिंह बिफर पड़ते हैं -- "तो त्यागमूर्तिजी, मैं कल असेम्बली में आपकी नीतियों की घोषणा कर दूँ । लोग आपको प्रति क्रियावादी और दकियानूसी कहकर हटाना चाहते हैं, आपकी न जाने कितनी शिकायतें दिल्ली में प्रधानमंत्री के पास पहुँची हैं, वह तो मैं आपको बचाये हुए हूँ ।"[21] इस पर त्यागमूर्ति जी तुरत्न अपना पैंतरा बदलते हुए कहते हैं -- " इन ट्रेक्टरों से अनाज की उपज़ बढ़ेगी -- यह ट्रेक्टर हिन्दुस्तान भर में बिकेंगे, इस ट्रेक्टरी मे सैंकडो - हजारों आदमी काम पायेंगे -- तो यह ट्रेक्टर फैक्टरी खुलनी चाहिए । हमारी सरकार एक करोड़ के शेयर ले लगी । राधेश्यामजी, तुम्हें हमारा पूरा सहयोग मिलेगा । कैबिनेट मीटिंग मे यह प्रस्ताव रख देना जबरसिंह ।"[22]

उक्त संवादों से हमारी राजनीति की सिद्धान्त हीनता एवं सत्ता-लिप्तता का संकेत मिलता है । हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरूने कभी कहा था --

"Democracy, as I understand it, means something more than a certain form of a Government and a body of egalitarian laws. It is essentially a scheme of values and moral standards in life. Whether you are democratic or not depends on how you act and think as an individual or a group. Democracy demands discipline, tolerance and mutual regard. Freedom demands respect for the freedom of others. In a democracy changes are made by mutual discussion and persuation and not by violent means. Democracy if it means any thing, means equality; not merely the equality of possessing a vote, but economic and social equality."[23]

साम्प्रतिक राजनीतिक मूल्यहीनता के सन्दर्भ में नेहरूजी के ये शब्द अपने आपमें एक बहुत बड़े व्यंग्य की सृष्टि करते हैं ।

साहित्यिक समस्याएँ :

राजनीतिक भ्रष्टता, भौतिक उन्नति की चाह, नैतिक प्रतिमानों के प्रति अनास्था, संकुचित एवं स्वार्थी दृष्टिकोण प्रभृति कारणों से साहित्य के क्षेत्रमें भी अनेक समस्याएँ दृष्टिगत हो रही हैं । "कथा-सूर्य की नयी यात्रा", "राग दरबारी", "कुरु कुरु स्वाहा", "दिल एक सादा कागज", "सबहिं नचावत राम गोसाईं", "नेताजी कहिन" प्रभृति उपन्यासों में अनेक साहित्यिक समस्याओं का उद्घाटन हुआ है ।

"कथा"सूर्य की नयी यात्रा" हिमांशु श्रीवास्तव का फण्टासी शैलीमें लिखा गया व्यंग्यप्रधान उपन्यास है । इसमें नभदीप नामक हिन्दी के एक

नवोदित साहित्यकारकी मृत्यु होती है । नभदीप की आत्मा स्वर्ग में कथा-सूर्य प्रेमचन्द्रजी की आत्मा से भेंट करती है । दोनों आत्माओं में जो साहित्यिक चर्चा होती है, उसके फलस्वरूप प्रेमचन्दजी की आत्मा को हिन्दी - साहित्यकी साम्प्रतिक गतिविधियों को जानने की उत्सुकता होती है । फलत: प्रेमचन्द्रजी की आत्मा हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित विभिन्न स्थानों की यात्रा करती है । इसमें फण्टासी के माध्यम से लेखकने वर्तमान साहित्यिक गतिविधियों पर कई व्यंग्य किए हैं ।

साम्प्रतिक हिन्दी साहित्यमें प्रचारवाद ही सब वादों में प्रमुखता पा रहा है ।[24] दो-तीन कहानियाँ प्रकाशित करनेवाले नभदीप का कथन है कि -- "हिन्दी के पाठकों के पास मेरी रचनाएँ समझने का दिमाग नहीं है । दो-तीन कहानियाँ प्रकाशित कराईं, परिचय में संपादक का हाथ पकड़ कर लिखवाया कि नभदीप नोबल पुरस्कार विजेता अर्नेस्ट हेमिंग्वे की प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करनेवाले हैं, फिर भी मेरे एक दो मित्रों के अलावा किसीने संपादक के नाम प्रशंसा सूचक पत्र नहीं लिखा ।"[25]

आलोचना एवं अनुसंधान की भाषा के सम्बन्ध में नभदीप बताता है कि अब हिन्दी साहित्य में "आलोचना करने के लिए शब्द-विशेष का उपयोग किया जाता है । जैसे, आयाम, प्रक्रिया, संतुलन, प्रतिमान, केन्द्र बिन्दु, परिवेश, साहित्यिक आस्फालन, बिम्ब, अणुबिम्ब, युग बोध, भावसंघात, भावधारा, परिपार्श्व, परिप्रेक्ष्य, नवचेतना, सामीप्य, आलंबन, प्रतिष्ठावना, उदात्तीकरण, लोक-संवहन, व्यंग्य-व्यूह, अपरम्परा, उत्स, उद्भव और हो सके तो इंगलिश, लैटिन, फ्रेंच भाषाओं के कुछ ऐसे शब्द जो

शीघ्रता से शब्दकोशों में न मिलें ।"[26] इसमें साहित्य की भाषागत कृत्रिमता, क्लिष्टता, संकुचितता एवं कठिनता पर व्यंग्य किया गया है ।

आलोचना के दयनीय एवं निम्नस्तर को व्यंजित करते हुए नभदीप कहता है -- "जो आलोचक केवल पुस्तक का फ्लैप देखकर कोई फतवा दे दे, उसे हम लोग इन्सपेक्टर मानते हैं । जो किसी पुस्तक के बारे में अन्यत्र प्रकाशित समीक्षा देखकर अपनी कोई राय कायम कर लेता है, उसे हम लोग सब - इन्सपेक्टर मानते हैं । जो आलोचक किसी पुस्तक के कुछ भाग पढ़कर इधर-उधर कुछ गलत या सही राय व्यक्त करता है, उसे हम लोग असिस्टेन्ड सब इन्सपेक्टर कहते हैं । हिन्दी साहित्यमें एल॰ सी॰ यानि लिट्रेट कॉंस्टेबुल की भी कमी नहीं । ये लोग पुस्तकें खरीद कर तो नहीं पढ़ते, मगर इन्सपेक्टर लोगों के नाम आई पुस्तकें उनसे माँगकर ले जाते हैं, पढ़ते हैं और अपने विचार सस्ते होटलों में, पान की दूकानों पर, मैदानो में मूँगफली खाते हुए व्यक्त करते हैं । साहित्यके सिपाही वे लोग हैं जो साहित्य-इन्सपेक्टर की धाक लेखकों पर जमाते हैं । और आलोचना का क्षेत्र पसंद करनेवाले शेष लोग यही हवलदार, दफादार और चौकीदार है ।"[27]

हिन्दी साहित्यमें जो मठाधीशी चलती है, उसके रहस्यों की चर्चा "साहित्यकेतु" नामक मठाधीश के पत्र से चलती है । कुछ अंश उद्धृत है -- "तुम कहोगे कि भाव के अभाव में कविता कैसे भेजूँ । मगर हमारे भाई ! कविता लिखने के लिए आज भावकी आवश्यकता है कहाँ ? केवल पंक्तियों में चमत्कार पैदा करने की आवश्यकता है । यानि किसी प्रकार ऐसी कविता लिख डालों कि कोई उसका अर्थ ही न लगा सके -- यहाँ तक की अगर तुमसे भी कोई तुम्हारी कविता का अर्थ पूछे तो व्याख्या न कर सको ।

मगर अपनी विवशता मत प्रकट करो । स्पष्ट कहो, मुझे जो लिखना था, मैं ने लिख दिया, अब आप पाठक के नाते चाहे जो अर्थ लगाएं । xxx प्रकृति-चित्रण करते-करते बीचमें एक अन्य वैज्ञानिक रहस्य की पंक्ति लिख मारो । जहाँ चाहो, वहाँ उपनिषद् और वेद के शब्द डाल सकते हो । मगर शायद तुम कहोगे कि यह बड़ी झंझट का काम है । वेद और उपनिषद जानता नहीं, समझ में आता नहीं, कहीं का शब्द कहीं पड़ जाए तो क्या करूँगा ? पागल हो, इसी पर तो कन्ट्रोवर्सी खड़ी होगी । xxx किसी सीनियर-मोस्ट और ख्याति प्राप्त साहित्यकार की रचनाओं पर कलम उठाओं । और हाँ, ध्यान रहे, जीवित साहित्यकार पर नहीं, स्वर्गीय पर । जीवित साहित्यकार के साथ खतरा यह है कि वह अपने पिट्ठुओं के नामसे जवाब देने या दिलवाने लगेगा । मगर, दोस्त मेरे । जीवित पर कलम उठाने से एक लाभ भी हो सकता है । तुम पूछोगे, दोनों बातें क्यों करते हो । उसका कारण है । अगर तुमने किसी जीवित साहित्यकार की प्रशंसा की, तो अन्य साहित्यकार भी तुम्हारी ओर अपने-आप खिचेंगे, हर माह अपनी पुस्तकें सम्मत्यर्थ या समालोचनार्थ भेजेंगे । उनके शहर जाओगे, तो अपने यहाँ ठहरने और जूठन गिराने को आमंत्रित करेंगे । xxx मेरी राय यह है कि तुम प्रसादजी की "कामायनी" के खिलाफ ही एक लेख भेजो । आधारहीन गलतियाँ निकालो, तो लेख चर्चित विषय हो जाएगा और इस प्रकार तुम शास्त्रीय समा लोचकों की नज़रमें आ जाओगे । xxx अगर काफी से अधिक क्लिष्ट शब्द शब्दकोश में न मिलें तो ऐसे शब्द गढ़ो, व्युत्पत्ति के फेर में मत पड़ना । साहित्य के कुछ रंगरूटों को फँसाकर रखो । वे जब श्रद्धापूर्वक मिलें तब उनका स्वागत चाय और पान से कर दो । कम उम्र को साहित्यिक

छोकरे ऐसे स्वागत को अपना अहोभाग्य समझते हैं । अगर कभी वे अपनी रचना या रचनाएँ तुम्हें सुनाएँ, तो फिर उनकी तुलना विदेशी साहित्यकारों से कर दिया करो । xxx फिर उनसे काम जो । xxx इनसे कहो कि ये लोग तुम्हारे लेखके पक्ष और और विपक्ष में संपादक को पत्र लिखें । मैं दोनों प्रकार के लेख प्रकाशित कर दूँगा । बस तुम्हारा लेख स्वत: चर्चा का विषय बन जायेगा ।"[28]

नयी कविता, प्रयोगवादी कविता, बुद्धिवादी कविता आदिके नाम पर कैसा अंट-संट, बेमेल लिखा जाता है इसका एक दृष्टांत श्री तिकड़म किशोर की एक बुद्धि वादी कविता में मिलता है --

"ओ
मेरी,
पोर्शिया, चौं को मत
इंडियन पोर्शिया ......
जब हम
शाम के एक
धुं
ध
लके में
मिले थे एक गन्दे तालाब के किनारे ।
एक अलसेशियन की इंडियन प्रेमिका
ने एक साथ जन्म दिये थे,
तीन श्वान-छौनों को ।
मै ने देखा था तेरी .... .
एस-कलर पुतलियों को .....
तेरी नायलोन की साड़ी से......

तैरती प्रीत – गंध ...
ने मुझ से कहा, करूँ कामना
तुम्हें माँ बनाने की ।
मेरी अव्यक्त, दमित कामनाको
तुमने और भी दबाया था
बर्थ-कन्ट्रोल और एबार्शनको रेकोमेन्डकर
एतयर्थ, हम भी एक-दूसरे को भोगेंगे –
देहदष्टि का रस सोखने को है,
सोखेंगे, सोखेंगे, सोखेंगे ...... ॥"[29]

इस कवितामें लोगों के भावसंघात, इमेज, बिम्ब, सिम्बल आदि न जाने क्या – क्या दिखता हैं ।

डॉ॰ राही मासूम रज़ा के उपन्यास "दिल एक सादा कागज़" में बम्बई के फिल्म-जगत में "घोस्ट राइटिंग" कैसे चलती है उसका उदाहरण "चंचल" के गीतों में मिलता हैं -- "चंचल" के गीत खूब हीट होते हैं, वस्तुत: वे गीत बागी द्वारा लिखे जाते थे ।[30] कवि-सम्मलनों तथा मुशायरों में कैसे-कैसे लोग आते हैं, साहित्य किस तरह फैशनका रूप ले रहा है प्रभृति तथ्यों को भी लेखक ने रेखांकित किया है -- "ज़िलाधीश और दूसरे सरकारी लोग उछल-उछलकर उसकी तारीफ़ कर रहे थे । उन बेचारों को पता भी न चला कि वह क्या सुना रहा था और क्या सुना रहा है । उन्हें तो बस यह मालूम था कि जब कोई शायर शेर सुना रहा हो तो उछल-उछलकर तारीफ़ करनी चाहिए ।"[31]

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "सबहिं नचावत राम गोसाई" में साहित्य और राजनीति, साहित्य और पूंजीवाद तथा साहित्य और प्रचारवाद के

सन्दर्भ में साम्प्रतिक साहित्यिक गुटबन्दियों, अवसरवादिता एवं साहित्य की अन्यमुखापेक्षिता जैसी समस्याओं को व्यंग्यात्मक ढंगसे उकेरा गया है ।

श्री शंकरदेव प्रशांत की गणना हिन्दीके युग-प्रवर्तक कवियों में होती थी । उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन छायावाद के कवि के रूपमें आरंभ किया था, फिर वह समाजवादी बनकर प्रगतिशीलता पर उतर आए थे । सन् 1939 के महायुद्ध के समय उन्होंने वीररस अपनाकर भारत के नौ जवानों को सेनामें भरती होने के लिए प्रोत्साहित किया और सन् 1947 में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्होंने स्वतंत्र भारतकी गौरवगाथा गाते हुए अनेक राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं । यही नहीं, शांति, सहअस्तित्व और अहिंसा का नारा अपनाकर उन्होंने कई महाकाव्य रच डाले ।[32]

दामोदरदास लखनऊ नगरका उठता हुआ कवि था, और उसने हिन्दी के नये कवियों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था । दामोदरदास के पिता रिखभदास के पास सीमेन्टकी एजेन्सी थी, और सीमेन्ट पर पाँच रूपया की बोरी ब्लैक करके जो बेतहाशा रूपया रिखभदास को मिल रहा था, उसमें से पाँच सौ रूपयों के चन्दे के बल पर उसने शंकरदेव प्रशांत द्वारा संकलित एवं प्रकाशित "नयी कविता के नव रत्न" नामक ग्रंथमें अपना नाम उन नव रत्नों में शामिल करा लिया था । यही नहीं, उसने अपना एक कविता - संग्रह भी प्रशांतजी की लम्बी भूमिका के साथ प्रकाशित करा दिया था ।[33]

प्रशांतजी को साहित्य-अकादमी पुरस्कार कैसे प्राप्त होता है, उसका भी बड़ा व्यंग्यात्मक चित्र लेखकने अंकित किया है -- "शंकरदेव प्रशांत के पास एक मोहक और आकर्षक व्यक्तित्व था, उनकी वाणी में माधुर्य के साथ ओज

था । देशके अनेक शीर्षस्थ नेताओं एवं महत्वपूर्ण मंत्रियों से उनकी प्रगाढ़ मित्रता थी, और इधर पाँच-छ: वर्षों से वह दिल्ली में बस गये थे । सरकारी अफसरों पर उनका प्रभाव था और न जाने कितनी सरकारी कमेटियों के वह सदस्य थे । इसके परिणामस्परूप वह हिन्दी के लेखकों एवं कवियों की सहायता करने की स्थिति में थे । जीवन के संघर्षों में पिसते हुए अनेक कवियों एवं लेखकों को उन्हों ने काम दिलवाया था, और बदले में यह कवि तथा लेखकगण हरामखोरी के पाप से बचने के लिए तथा अगली सीढ़ियों को चढ़ने के लिए शंकरदेव प्रशांत की छत्रछायामें आकर उनका यशोगान करते थे । इस शिष्य - समुदायने विगत तीन वर्षों में प्रशांतजी की जयजयकार का जो शोर मचाया उससे विवश होकर हिन्दीवालों को उस वर्षका साहित्य अकादमी का पुरस्कार उन्हें देना पड़ गया ।"[34]

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "राग दरबारी" में हमारे लेखकों-कवियों के दार्शनिक लटकों को व्यंग्य-शैली में उकेरा गया है -- "सभी जानते हैं कि हमारे कवि और कहानीकार वास्तव में दार्शनिक हैं और कविता या कथा-साहित्य तो वे सिर्फ यूँ ही लिखते हैं । किसी भी सुबुंक-सुबुक-वादी उपन्यास में पढ़ा जा सकता है कि नायक ने नायिका के जलते हुए होठों पर होठ रखे और कहा, "नहीं-नहीं निशी, मैं उसे नहीं स्वीकार कर सकता । वह मेरा सत्य नहीं है । वह तुम्हारा अपना सत्य है ।" xxx निशी का ब्लाउज़ जिस्म से चूकर ज़मीन पर गिर जाता है । वह अस्फुट स्वर मे कहती है, "निक्कू, क्या तुम्हारा सत्य मेरे सत्य से अलग है ?" xxx इसीको "ठाँप कहते हैं । इसी के साथ निशी और निक्कू फिलासफी की हजार मीटरवाली

दौड़ पर निकल पड़ते हैं । अब निशी की "ब्रा" भी ज़मीन पर गिर जाती है, नीक्कू की टाई और कमीज़ हवा मे उड़ जाती है । गिरते-पड़ते, एक-दूसरे पर लौटते-पोटते वे मैदान के दूसरे छोर पर लगे हुए फीते को सत्य समझकर किसी तरह यहाँ पहुँचते हैं, तब पता चलता है, वह सत्य नहीं है । फिर संयोग श्रृंगार, जलते हुए होंठ । फिलासफी की मार । थोड़ी ही देर में वे मैदान छोड़कर जंगलमें आ जाते हैं और पत्थरों से छिलते हुए, काँटों से बिंधे, नंगे-बदन झाँक-झाँककर प्रत्येक झाड़ी में देखते हैं और इस तरह नंगापन, सुबुक-सुबुक, चूमाचाटी, व्याख्यान आदि के माहौल में उस खरगोशका पीछा करते रहते हैं, जिसका कि नाम सत्य है । "[35]

मनोहरश्याम जोशी के उपन्यास "नेताजी कहिन" में शासक-वर्ग के नेताओं से मिलकर साहित्य के नाम पर कैसे धनोपार्जन हो सकता है उसकी ओर लेखकने सूचक ढंग से संकेत किया है -- "सउदा करो तो इसी फटीचर हिन्दी साहित्ते से आपका उद्धार करा दें कक्का । xxx इस किताब को आप खुदे छापो । जो भी लागत आवे उससे पचगुना रखा दाम । हम समझते हैं कि दस रूपया आयेगी उइसी किताब की लागत, पचास रक्खा कीमत समझे । पचपन पर सण्ट कमीसन पर हमको देइ दो अउर छुट्टी । चार हजार से निकाला संस्करन, भतीजा बिकवा देई, बमोचनो करा देई मुख्यमंत्री से किसी । फोटू-खबर ऊह सब सेंत में । भतीजा का बनि हैं एक लाख दस हजार । ओमें से 50 हजार इहाँ-उहाँ दान - दक्खिना में देह के पड़ी । बाकी साठ हजार उसकी दउड़-धूप, चा-पानी के । कक्का के कुछो घसीट मार ने के नब्बे हजार बनि हैं ओमें से चालीस से कुछ कम जइहैं कागजवाले को, प्रेसको, बाकी पचास रहि है घर मा ।"[36]

अन्यत्र इसी हिन्दी साहित्य के सम्बन्धमें नेताजी कहते हैं -- "अरे गोसाईं तुलसीदास के बाद हिन्दी-भाषी छेत्र में किसी ने साहि-ते लिखा हो तो उसका नाम-पता हमको बताइयेगा कबहुँ फुर्सत से । xxx जो लिखा साहि-ते लिखा ससुर । गाली दिया, भँडास निकाला, रोना रोया, क्रांत किया, सब ससुर कलम-कागजे से । बाकी यह समझ लिया जाय कक्का, तुम्हारा हिन्दी साहि-त किरौं लयवल हय । xxx हम क्या, कोई समझदार आदमी नहीं पढ़ता ससुर हिन्दी साहि-त । अरे तीस करोड़ लोगों की भासा हय हिन्दी अऊर दस-बारह करोड़ अउर भी हय जो हिन्दी समझता हय । फिर भी आपका अमर साहि-त ससुर सरकारी खरीद के लिए मरा जा रहा हय ।"[37]

मनोहरश्याम जोशी के ही एक अन्य उपन्यास "कुरु कुरु स्वाहा" में साम्प्रतिक साहित्यिक परिवेश पर कई करारे व्यंग्य किए गए हैं । हिन्दी साहित्यकी कृत्रिम व क्लिष्ट भाषा पर कई स्थानों पर व्यंग्य मिलता है । एक बार तारा झवेरी (पहुँचेली) की किसी बात पर जोशी जी कहते हैं -- "उसकी स्त्रियोचित भावुकता बोर्जेस को नया आयाम दे रही है ।"[38] इस कथन पर तारा झवेरी कहती है -- "आइन्दा के लिए याद रखो कि स्त्रियोचित भावुकता और आयाम जैसे शब्द बोलनेवाला व्यक्ति मौलिक नहीं हो सकता । तुम चौरासी लाखवीं कार्बन कापी हो उस मूल पाठकी जिसे सँभालने लायक न समझकर फेंक दिया गया है ।"[39]

अन्यत्र आधुनिक हिन्दी साहित्यकार हर बातमें जो शिचम का घोटा लगाते है, उसी पर फण्टासी शैलो मे व्यंग्य करते हुए फ्रायड, मार्क्स और टोल्सछोय का हवाला दिया गया है । उपन्यास के नायक जोशीजी एक

कहानी लिखने जा रहे हैं। पिता-पुत्री के चुम्बन की यह कहानी प्रगीतात्मक होगी । गीत लेकिन एक पगली का गाया हुआ होगा ।[40]

अतिरिक्त प्रेरणा के लिए जोशीजी पहले फ्रायड और बादमें मार्क्स के पास जाते हैं। बाबा मार्क्स ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में एक पोथी पढ़ते-पढ़ते सो गये थे। जोशीजी के आने से जागे। बोले -- "लेखक हो। तो काल्डवेल पढो लूकाच पढ़ो, मुझे परेशान मत करो।"[41]

फिर जोशीजी बाबा तालस्ताय के पास गए। चेखव भी वहाँ थे। उन्होंने बाबा तालस्ताय को बताया -- "जोशी एक पगली के चुम्बन पर प्रगीतात्मक कथा लिख रहा है।"[42] बाबा तालस्ताय ने पूछा -- "यह जोशी चुम्बन - वुम्बन से आगे बढ़ा है उस पगली के साथ कि यों ही कहानी लिखने बैठ गया है ? और ये कहानियाँ ससुरी प्रगीतात्मक कब से होने लगी ?"[43]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यासों में साम्प्रतिक साहित्य-जगत के कृत्रिमता, क्लिष्टता, अस्पष्टता, फैशन परस्ती, गुटबन्दी, गूटबन्दी आलोचना, आलोचना के नाम पर उखाड़-पछाड़, साहित्यका राजनीति और पूंजीवाद से गठबन्धन जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण मुदों की पड़ताल हुई हैं।

शैक्षणिक समस्याएँ :

साहित्यकी भाँति शिक्षा जगतमें भी अजीब धाँधली मची हुई है, फलत: शैक्षिक - संस्थाओं एवं व्यक्तियों से सम्बन्धित समस्याओं के प्रति यहाँ भी प्राय: व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण अंगीकृत हुआ है। उक्त सभी उपन्यासों में प्राय

इस क्षेत्र का उल्लेख मिलता है । "कथा-सूर्य की नयी यात्रा" में विश्व-विद्यालयों के विभागाध्यक्षों तथा प्रोफेसरों के व्यंग्यात्मक चित्र उपलब्ध होते हैं । इनका अधिकांश समय यूनिवर्सिटी पालिटिक्स, प्रकाशकों से सांठगांठ एवं दरबारगिरी में व्यतीत होता है । पुस्तकों के क्लेप या अन्यत्र प्रकाशित पुस्तक-रिव्यूओं के आधार पर उनकी आलोचना की गाड़ी चलती रहती है ।

उपन्यासमें धूर्तराज नामक एक प्रकाशक "आचार्य शंखधर, डी॰ लिट्॰" से, एक पुस्तक के बारे में बातचीत करता है । पुस्तक के तीन-चार निबन्ध लिखे गए है, किन्तु अभी दो-चार निबन्ध बाकी है । सबमिशन का वक्त आ रहा है, अत: प्रकाशक आचार्य शंखधर से कहता है : "आप तीन-चार निबन्धों की चिंता मत कीजिए । किसी एम॰ए॰ के छात्र से लिखवा डालिए । "नवनीतवाद" पर एम॰ए॰ का कोई भी छात्र मजे से तीन-चार निबन्ध लिख सकता है । हाँ आप उसकी पाडुलिपि को एक बार सरसरी निगाह से देख जाइएगा ।"[44] हिन्दी के एक अन्य आचार्य सीपीधी वहाँ आ धमकते हैं । तीनो का वार्तालाप नीचे दिया जा रहा है :-- "आचार्य सीपीधर की ओर संकेत करके शंखधरने धूर्तराज से कहा, "किताब मंजूर करने-करानेवाले यही लोग हैं । इन्हें भी कह दीजिए ।"

"धूर्तराजने मुसकुरा कर सीपीधर की ओर देखा और कहा, "ये हमारी पुस्तक के लिए एतराज थोड़े ही करेंगे । लेखक आप हैं ही ।"

"सीपीधर ने कहा," मैं क्यों एतराज करूँगा धूर्तराजजी । आप मेरी पुस्तक भी छापिए न - स्वीकृत हो जाएगी ।"

"धूर्तराज ने कहा, "छाप दूँगा । मगर एक ही प्रकाशन-संस्था की एक साथ दो पुस्तकें .... थोड़ी दिक्कत होगी -- खैर, एक पुस्तक में कर्जी

नामसे सबमिट करूँगा । क्या विषय है आपकी पुस्तक का ? "आचार्य सीपीधर ने गंभीर स्वर में अपनी पुस्तक का विषय बतलाया, "नवनीत वाद: प्रक्रिया और प्रलेपन" ।"

"आचार्य शँखधर ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "वाह साहब, आपका विषय तो मेरे विषयका पूरक है ।"

"सीपीधर बोले, "ठीक है । मैं आपकी पुस्तकका अनुमोदन करूँगा और आप मेरी पुस्तक का दोनों पुस्तकें स्वीकृत हो जाएँगी ।"[45]

उक्त संवाद से उच्च विद्या के क्षेत्र में चलनेवाले पारस्परिक आर्थिक आदान-प्रदान तथा लेखक प्रोफेसर प्रकाशक की साँठ गाँठ आदिका परिचय प्राप्त होता है ।

डॉ· राही मासूम रज़ा के उपन्यास "टोपी शुक्ला" में यूनिवर्सिटी अध्यापकों की नियुक्तियों के विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । "बाहर से जो एक्सपर्ट आते हैं उन्हें अपने भत्ते और अगली ट्रेन पकड़ने की जलदी होती है । चुनाव हैड आफ दी डिपार्टमेन्ट ही करता है । और उसकी अपनी पसंद और नापसन्द होती है । वह उसीको लेता है जिसे वह पसंद करता है और कभी-कभी तो वह यह भी नहीं कर पाता क्योंकि उस पर हज़ार तरह के दबाव पड़ते हैं ।"[46]

अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी में रफ़्फन को रीडरशीप इसलिए नहीं मिलती उसके यहाँ एक हिन्दू रह रहा है । "टोपी" को "सनातन धर्म" डिगरी कॉलेज, बहराइच" में नौकरी नहीं मिलती क्योंकि वह अलिगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटीका विद्यार्थी है ।[47] अन्तत: टोपी निश्चय करता है कि "जिस देशकी यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि ग़ालिब सुन्नी थे

या शीआ और रसखान हिन्दू थे ये मुसलमान, उस देशमे पढ़ाने का काम नहीं करूँगा ।"[48]

डॉ• श्रीलाल शुक्ल कृत "राग दरबारी" उपन्यास के केन्द्र में ही एक शैक्षिक-संस्था है, अत: यहाँ शिक्षा - जगतमें व्याप्त विसंगतियों को बखूबी उभारा गया है । उसके छंगामल इण्टरमीडिएट कॉलिज में अध्यापन को साइड् बिजनेस समझनेवाले मास्टर मोतीराम हैं जो आपात धनत्व के सिद्धांत को अपनी आटा चक्की के माध्यम से सिखाते हैं । उनका ध्यान पढ़ाने में कम अपनी खेती-व्यवसाय और आटाचक्की में अधिक फँसा रहता है । उन्हें प्रिंसिपल भी कुछ नहीं कहते क्योंकि वे अपने तबके के संवाददाता और वैद्यजी के खास कृपापात्रों में से हैं । मास्टर खन्ना और मालवीय जैसे अध्यापक दूसरों की तुलना में कुछ अधिक प्रबुद्ध हैं, किन्तु कॉलिज की स्थानीय राजनीति के दलदल में ही अधिक उलझे रहते हैं और अंततोगत्वा गुण्डागर्दी के बल पर उन्हें वहाँ से निकाला जाता है ।

इसी उपन्यासमें प्रिंसिपल महोदय यूनिवर्सिटी लेक्चरर की जिस स्थिति का वर्णन करते हैं, वह यथास्थिति से अधिक दूर नहीं है : "और सच पूछो तो मुझे यूनिवर्सिटी में लेक्चरर न होने का भी कोई गम नहीं है । वहाँ तो और भी नरक है । पूरा कुम्भीपाक । दिनरात चापलूसी । कोई सरकारी बोर्ड दस रूपल्ली की ग्रांट देता है और फिर कान पकड़कर जैसी चाहे वैसी थीसीस लिखा लेता है । जिसे देखो कोई-न-कोई रिसर्च प्रोजेक्ट हथियाए हैं । कहते हैं रिसर्च कर रहे हैं, पर रिसर्च भी क्या, जिसका खाते हैं, उसीका गाते हैं । और कहलाते क्या हैं? देखो, देखो कौन-सा

शब्द है -- हाँ, हाँ याद आया - कहलाते है बुद्धि जीवी, पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाय कि हम अपने बाप की औलाद नहीं है तो साबित कर देंगे । चौराहे पर इस जूते मार लो पर एक बार अमरिका भेज दो । ये हैं बुद्धिजीवी ।"[49]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आलोचय उपन्यासों में निरूपित शिक्षा - जगत की समस्याएँ अनेक विकृतियों, विसंगतियों, विषमताओं और विद्रूपताओं से परिपूर्ण हैं ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं :--

:1: राजनीति नीति रहित एवं दृष्टिहीन होती है, यह एक भ्रामक धारणा है । वस्तुत: राजनीतिक प्रतिमान जितने ऊँचे, आदर्श, विशाल - दृष्टि - संपन्न होंगे उतना ही कोई देश व समाज ऊपर उठ सकता है ।

:2: नगरीय परिवेश के उपन्यासों में निरूपित राजनीतिक समस्याओंको अयोग्य एवं भ्रष्ट लोगों का राजनीतिमें प्रवेश, राजनीति - एक व्यवसाय, सत्ताका हस्तान्तरण, चुनाव-हथकण्डे, सत्ता की राजनीति प्रभृति के परिप्रेक्ष्यमें देखा जा सकता है ।

:3: आलोच्य-काल के "कथा-सूर्य की नयी यात्रा", "सबहिं नचावत राम गोसाई", "दिल एक सादा कागज", "कुरु कुरु स्वाहा", "राग दरबारी", "टोपी शुक्ला" प्रभृति उपन्यासों में साम्प्रतिक साहित्य - जगत के कृत्रिमता, क्लिष्टता, अस्पष्टता, फैशन परस्ती, गुटबन्दी, गुटबन्दी आलोचना जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर एक व्यंग्यात्मक दृष्टिपात हुआ है ।

:4: हमारा शैक्षिक जगत अनेक विसंगतिपूर्ण समस्याओं से आक्रान्त है ।

. . . . .

स न्द र्भ

1 "Ethics is not yet clearly distinguished from politics is also concerned with the good or welfare of man, so far as they are members of states. And in fact the term Ethics is sometimes used, even by modern writers, in a wide sense, so as to include at least a part of politics." : 'Outlines of the History of Ethics' : Henry Sidgwick : P.2.

2 "Right must be held sacred by man, however great the cost and sacrifice to be. Rulling power and all politics must bend the knee to the principles of right and may in that way hope reach slowly perhaps." : 'Perpetual Peace' : Kant : P. 70.

3 ".......Man is by nature a political animal.... this is certainly the chief and of individuals and the states. And also for the sake of mere life man kind meet together and maintain the political community." : 'Politics' : Aristottle : P. 7.

4 "दिल एक सादा कागज़" : पृ॰ 114 ।

5 "टोपी शुक्ला" : पृ॰ 102 ।

6 "प्रेम अपवित्र नदी" : पृ॰ 279 ।

7 "प्रश्न और मरीचिका" : पृ॰ 246 ।

8 "रावी का तट " यमुना का तट" कविता की एक पंक्ति ।

9 "मछली भरी हुई" : पृ॰ 138 ।

10 "प्रश्न और परीचिका" : पृ॰ 39-40 ।

11 "सब हि नचावत राम गोसाईं" : पृ॰ 97 ।

12 दृष्टव्य: "राग दरबारी" : पृ॰ 262-271 ।

13 वही: पृ॰ 190 ।

14 वही: पृ॰ 176 ।

15 वही: पृ॰ 176 ।

16 "प्रश्न और मरीचिका" : पृ॰ 513 ।

17 वही : पृ॰ 255 ।

18 वही : पृ॰ 82 ।

19 "सब हिं नचावत राम गोसाईं" : पृ॰ 83 ।

20 वही: पृ॰ 131 ।

21 वही: पृ॰ 131 ।

22 वही: पृ॰ 132 ।

23 'Homage to Nehru' : P. 119 ।

24 "कथा-सूर्य की नयी यात्रा" : पृ॰ 7 ।

25 वही: पृ॰ 5-6 ।

26 वही: पृ॰ 9 ।

27 वही: पृ॰ 15-16 ।

28 वही: पृ॰ 35-38 ।

29 वही: पृ॰ 54 ।

30 "दिल एक सादा कागज़" : पृ॰ 85 ।

31 वही: पृ॰ 83 ।

32 "सबहि नचावत राम गोसाई" : पृ॰ 139 ।

33 वही: पृ॰ 140 ।

34 वही: पृ॰ 139-140 ।

35 "राग दरबारी" : पृ॰ 99-100 ।

36 "नेताजी कहिन" : पृ॰ 56-57 ।

37 वही: पृ॰ 54-55 ।

38 "कुरू कुरू स्वाहा" : पृ॰ 52 ।

39 वही: पृ॰ 52-53 ।

40 वही: पृ॰ 58 ।

41 वही: पृ॰ 58 ।

42 वही: पृ॰ 58 ।

43 वही: पृ॰ 58 ।

44 "कथा-सूर्य की नयी यात्रा" : पृ॰ 88 ।

45 वही: पृ॰ 89 ।

46 "टोपी शुक्ला" : पृ॰ 88 ।

47 वही: पृ॰ 130-131 ।

48 वही: पृ॰ 131 ।

49 "राग दरबारी" : पृ॰ 250 ।

. . . . .